Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, General Impact Factor : 2.5442, Volume 08, No. 02, April, 2018, pp. 461-468

राष्ट्रीय पुनर्जागरण एवं प्रखर राष्ट्रवाद के संदर्भ में स्वामी दयानंद सरस्वती का योगदान

डॉ. मनोज कुमार शर्मा*

lkj

आधुनिक भारत एवं आक्रामक राष्ट्रवाद के प्रणेता स्वामी दयानंद सरस्वती के विचारों का अध्ययन राष्ट्रीय पुनर्जागरण के संदर्भ में अपेक्षित है। उन्होंने ऐसे समय में जबकि भारतीय जनमानस आत्मग्लानि, हीनता एवं कायरता से ग्रसित था, उस समय उन्होंने वैदिक ज्ञान, भारतीय जीवन दर्शन एवं मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा कर भारतीयों में उत्साह, आत्मगौरव व विश्वास का संचार किया। देश में सामाजिक–धार्मिक सुधारों की क्रियान्विति करके, उन्होंने राष्ट्रीय भावना को उत्सर्जित किया। वेदों में संचित ज्ञान व दर्शन की सर्वोच्चता का आव्हान करके उन्होंने तत्कालीन विद्यमान राष्ट्रीय आत्महीनता का प्रतिकार कर राष्ट्रीय अस्मिता को पुनर्जीवित किया। वे सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों का प्रखर खण्डन करके, देश में सामाजिक जागृति के अग्रदूत बने। इस्लाम और ईसाइयत द्वारा हिन्दू धर्म पर किए जा रहे प्रहारों का उन्होंने प्रतिउत्तर उन्हीं के शब्दों में उनके धर्म की दुर्बलताओं को स्पष्ट करके, वैदिक मान्यताओं, भारतीय संस्कृति व जीवन मूल्यों की श्रेष्ठता को स्थापित किया। निश्चित ही उनके सामाजिक–धार्मिक विचारों की अभिव्यक्ति ने आक्रामक राष्ट्रवाद का मार्ग प्रशस्त किया। ज्ञातव्य हो कि दयानंद सरस्वती ने प्रत्यक्षतः राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन में सहभागिता नहीं की, परन्तु उनके लेखों, भाष्यों व चर्चाओं में प्रकट हुए सामाजिक–धार्मिक–राजनीतिक विचारों एवं उनके द्वारा स्थापित संस्था 'आर्यसमाज' ने सामाजिक–धार्मिक पुनरुत्थान एवं राष्ट्रीय चेतना जागृत करने में उल्लेखनीय भूमिका का निर्वहन किया। प्रस्तुत शोध पत्र स्वामी दयानंद सरस्वती के राष्ट्रीय पुनर्जागरण एवं प्रखर राष्ट्रवाद के संदर्भ में योगदान के विश्लेषण का प्रयास है।

'kCnkoyh: पुनर्जागरण, कुरीतियाँ, वैदिक मान्यता, आक्रामक राष्ट्रवाद, आर्यसमाज, राष्ट्रीय चेतना, पुनर्प्रतिष्ठा, स्वराज, बहिष्कार, गुरुकुल, वर्णव्यवस्था, ईसाइयत, हिन्दुत्व, सतीप्रथा, आश्रम, जागृति, आव्हान, साम्राज्यवादी, देवनागरी, उन्नयन, स्वदेशी, उग्रवादी, अधिष्ठान, आत्मग्लानि, गरिमा, अद्यःपतन, रूढ़ियाँ, सभ्यता, शिल्पकार।

ifjp;

19 वीं शताब्दी के भारत एवं राष्ट्रीय आंदोलन का अध्ययन स्वामी दयानंद सरस्वती के सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक विचारों के परीक्षण एवं मूल्यांकन के बिना अपूर्ण रहेगा क्योंकि वे आधुनिक भारत एवं आक्रामक राष्ट्रवाद के शिल्पकारों में प्रमुख स्थान रखते हैं। वे आध्यात्मिक चिंतक होने के साथ–साथ सामाजिक एवं धार्मिक सुधारक भी थे। हालांकि वे प्लेटो एवं अरस्तू के समान राजनीतिक विचारक नहीं थे, फिर भी उनका विचार था कि समग्र जीवन चिंतन से राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता है। इसलिए उनके राजनीतिक

* सह–आचार्य, राजनीति. विज्ञान विभाग, राजकीय शाकम्भर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, साँभर लेक, जयपुर, राजस्थान।

विचारों की आधारशिला दार्शनिक रही है। उनका दृढ़ विश्वास था कि जब तक देश से सामाजिक व धार्मिक बुराइयों को दूर नहीं किया जायेगा, तब तक भारत में किसी भी प्रकार का राजनीतिक उन्नयन संभव नहीं होगा। इसलिए उनका कार्यक्षेत्र मूलतः सामाजिक–धार्मिक सुधार रहे। प्राचीन भारत के गौरव का उद्घोष एवं वैदिक ज्ञान, भारतीय जीवन दर्शन एवं मूल्यों की पुनर्प्रतिष्ठा करके उन्होंने भारतीयों में आत्मसम्मान व उत्साह को पुनःस्थापित करने के अथक प्रयास किए। समतायुक्त, न्याययुक्त एवं शोषणमुक्त व्यवस्था की पुनःस्थापना हेतु उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन उत्सर्जित कर दिया।

oSfnd Lojkt dk vkogku

वैदिक स्वराज का आदर्श, जिसका उल्लेख महाभारत में भी बार–बार हुआ है,उनके राजनीतिक विचारों का केन्द्रीय तत्त्व रहा है। आर्यसमाज की स्थापना (10 अप्रेल, 1875, बम्बई) के साथ उन्होंने सामाजिक–धार्मिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण के अभियान को नवजीवन प्रदान किया। स्वदेशी प्रचार, बहिष्कार आंदोलन, राष्ट्रीय शिक्षण परम्परा, गुरुकुल प्रणाली, स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहन, समाज सुधार कार्यक्रम, दलितोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, वर्ण व्यवस्था एवं जातिप्रथा निषेध आदि ऐसे ठोस रचनात्मक कार्यक्रम संचालित किए, जिससे राष्ट्रवाद का प्रसार जनसाधारण तक सम्भव हो सका। ''समूचा आर्यसमाज आंदोलन स्वधर्म, स्वभाषा, स्वदेशी एवं स्वराज– इन चार स्तम्भों पर आधारित रहा है।''[1] उसकी स्वदेशभक्ति का आदर्श–प्रेम तथा बंधुत्व के ऊपर आधारित है और वह राष्ट्र की एकता से परे समूची मानवता के कल्याण की कामना करता हैं। यह एकता बंधुत्व, समान तथा स्वतंत्र मनुष्यों की एकता है–स्वामी, दास और शोषक, शोषित की थोपी गई एकता नहीं।[2] स्वराज प्राप्ति के लगभग 70 वर्ष पूर्व ही दयानंद सरस्वती ने सच्चे स्वराज का स्वरूप प्रस्तुत कर दिया था। 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में उन्होंने लिखा है कि, ''आर्यावर्त में भी आर्यों का अखण्ड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है। जो कुछ है, सो भी विदेशियों द्वारा पदक्रांत हो रहा है, कुछ थोड़े तथा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है, देशवासियों को अनेक प्रकार का कष्ट भोगना पड़ता है। कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। मत–मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर पिता के समान कृपा, न्याय व दया के साथ विदेशियों का राज पूर्ण सुखदायक नहीं है।''[3] इस प्रकार उन्होंने स्पष्ट शब्दों मे 'सुराज' (अच्छा शासन) व 'स्वराज' (स्वशासन) का भेद व्यक्त कर दिया। यहाँ यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि जिस स्वराज व आदर्शों की माँग को कांग्रेस 20 वीं सदी के प्रथम चरण की समाप्ति पर (सन् 1929 में लाहौर में रावी के तट पर) पहुँच सकी, दयानंद ने 55 वर्ष पूर्व ही यह संदेश प्रवाहित कर दिया था, जिससे भारतीयों में यह चेतना जाग्रत हुई कि सामाजिक–आर्थिक सुधारों के लिए राजनीतिक स्वायत्तता आवश्यक शर्त है।

osnksa dh vksj ykSVks

दयानंद सरस्वती ने सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से भारतीय राष्ट्रवाद को नवीन दिशा प्रदान की। उन्होंने तत्कालीन विविध पंथों, पौराणिक सम्प्रदायों, अंधविश्वासों एवं मतों द्वारा जर्जरित हो रहे समाज को पुनर्जीवन एवं राष्ट्रीय अस्मिता को क्षीण कर रहे इस्लाम एवं ईसाइयत के प्रहारों से हिन्दुत्व का संरक्षण प्रदान करने हेतु स्थिति का विश्लेषण कर समाधान प्रस्तुत किए। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा, ''आर्य विशिष्ट जाति है, वेद विशिष्ट ग्रंथ हैं, आर्यावर्त विशिष्ट भूमि है।''[4] उनका दृढ़ विश्वास था कि किसी भी वैदेशिक पंथ को अंगीकार कर लेने से निश्चित तौर पर राष्ट्रीय भावना को हानि हो जायेगी। यही कारण था कि उन्होंने विदेशी धार्मिक–सांस्कृतिक हस्तक्षेप का प्रबल विरोध किया। सर वेलेन्टाइन शिरोल ने कहा है कि, ''दयानंद की शिक्षाओं की मूल प्रवृत्ति हिन्दुत्व का सुधार करने की उतनी नहीं है, जितनी कि उसे विदेशी प्रभावों के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए संगठित करने की है, जो उनके विचारों में इसका विराष्ट्रीकरण कर रहे हैं।''[5] इसलिए दयानंद ने 'वेदों की ओर लौटो' का नारा दिया। जेम्स हेस्टिंग्स ने उन्हें 'भारत में आध्यात्मिक जागृति का मार्टिन लूथर'[6] माना है। जिस प्रकार मार्टिन लूथर ने शाश्वत सत्य के सहारे बाइबिल के सिद्धान्तों का समर्थन किया है, उसी प्रकार दयानंद ने सनातन सत्य को वेद–ज्ञान के अनुसार जीवन में उतारा। 'वेदों की ओर लौटो' की राजनीतिक

निष्पत्ति 'आर्यावर्त आर्यों के लिए है' के रूप में हुई। ''इस प्रकार युगदृष्टा स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारतीय जनता के लिए न केवल राष्ट्र–धर्म बल्कि राज–धर्म अर्थात् भारतीय जनता की सम्प्रभुता का भी स्पष्ट शब्दों में निर्धारण कर दिया।''[7]

vk;kor&vk;k d fy,

दयानंद सरस्वती का यह संदेश कालांतर में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन, 1906 में 'भारतवर्ष भारतीयों के लिए' के रूप में दोहराया गया। अपने अध्यक्षीय उद्‌बोधन मे दादाभाई नौरोजी ने कहा कि, ''ब्रिटिश नागरिक के रूप में अपने अधिकारों की छोटी–छोटी बातों का जिक्र करने के बजाय हम सारी बातों को एक शब्द में रख सकते हैं और वह हैं, 'संयुक्त राज्य अथवा उपनिवेशों की तरह का स्वशासन या स्वराज्य'। इस प्रकार स्वामी दयानंद के विचार कांग्रेस के 21 वें अधिवेशन से लेकर आगामी सभी वर्षों में राष्ट्रीय आंदोलन के मुख्य स्वर बने रहे।''[8] उन्होंने 'सत्यार्थ प्रकाश' में यह उल्लेखित किया है कि, ''यह आर्यावर्त देश ऐसा है जिसके सदृश्य भूगोल में दूसरा देश नहीं है। आर्यावर्त देश ही सच्चा पारसमणि है जिसको लोहे रूपी विदेशी छूते ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।''[9] उनके समस्त ग्रंथों में स्वदेशाभिमान की चरम अभिव्यक्ति हुई है। 'सत्यार्थ प्रकाश' में उन्होंने चक्रवर्ती साम्राज्य तथा स्वराज का अद्वितीय चित्रांकन किया है। ''वेदमंत्रों के भाष्य में भी उन्होंने देश की राजनीतिक दासता पर शोक प्रकट करते हुए ईश्वरीय सहायता की प्रार्थना की।''[10]

दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथों, लेखों, भाषणों एवं चर्चाओं के माध्यम से समाज में पुनर्जागरण कर राष्ट्रोद्धार का अभूतपूर्व कार्य किया। उनकी संस्था 'आर्यसमाज' धार्मिक–सामाजिक–राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दुत्व के शक्तिशाली स्वर के रूप में प्रकट हुई। एच.सी.ई. ज़कारिया ने लिखा है कि, ''भारत की दुःखद फूट को दूर करने के लिए तथा सामाजिक दृष्टि से देश को एकताबद्ध करने के लिए दयानंद जातियों तथा वर्गों के भेदभाव को नष्ट करना चाहते थे। उसे धार्मिक एकता प्रदान करने के लिए वे अन्य धर्मों के स्थान पर आर्य धर्म की स्थापना करना चाहते थे। उसे राजनीतिक दृष्टि से एक करने के लिए वे उसे विदेशी शासन से मुक्ति दिलाना चाहते थे।''[11] आर्यसमाज का वैदिक पुनरुत्थानवाद विदेशी सभ्यता की चुनौती के विरुद्ध एक निरोधात्मक साधन था। इसलिए वह राष्ट्रीय स्वाधीनता का पोषक बन गया। उसने धर्मशास्त्रीय तथा सामाजिक विषयों में बुद्धिवाद तथा स्वतंत्रता का पोषण किया। इन क्षेत्रों में आंशिक बौद्धिकता का उदय राजनीतिक स्वतंत्रता की आधारशिला बन गई।

lkekftd&/kkfeZd lq/kkj

18 वीं सदी का भारतीयसमाज अद्यःपतन के चरम पर था। दयानंद का विचार था कि भारत के परम वैभव की प्राप्ति क्रांतिकारी सामाजिक एवं धार्मिक सुधारों के द्वारा सामाजिक जीवन को सुसंगठित करके ही की जा सकती है। इसी ध्येय के मध्येनजर ''आर्यसमाज में सुप्त, सड़ी–गली हिंदू जाति को झकझोर कर उदारतावाद की संजीवनी का संचार किया।[12] वह जाति वर्ण रहित समाज के लिए निरन्तर सक्रिय रहा है।''[13] दयानंद सरस्वती का सम्पूर्ण वैचारिक अधिष्ठान सामाजिक जीवन को उच्च नैतिक मूल्यों पर आधारित, विवेकहीन परम्पराओं, अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों के उन्मूलन तथा सामाजिक व्यवस्था को शोषणमुक्त, न्याययुक्त एवं समतायुक्त सिद्धान्तों के अनुरुप संगठित करने पर केन्द्रित रहा है। उनका परम्परागत रूढ़ियों के खण्डन का आधार शुद्ध आलोचनात्मक बुद्धिवाद न होकर–वेद थे, जो कि परम्परागत श्रद्धारूपी दुर्ग के आधार स्तम्भ रहे हैं। यहाँ यह स्पष्ट करना उचित होगा कि वे किसी धर्म–विशेष से नफरत नहीं करते थे, परन्तु जहाँ कहीं भी उन्हें पाखण्ड, ढोंग, असत्य व्यवहार, दम्भ, आडम्बर मिलता, तो उसकी धज्जियाँ उडाये बिना उन्हें चैन नहीं मिलता था।

स्वामी दयानंद ने वेदकालीन सभ्यता के पुनरागमन का आव्हान किया। उन्होंने ''सतीप्रथा को वेद विरुद्ध बताया और समाज को अवैज्ञानिक, अवैदिक रूढ़ियों से मुक्त होने का आग्रह किया। स्त्रियों के उत्थान और शिक्षण, बाल विवाह, वृद्ध विवाह आदि निषेध, दहेज प्रथा, पर्दा प्रथा का विरोध, कन्या वध, कन्या वर क्रय–विक्रय, गौरक्षा का प्रसार, मत–मतान्तरों का खण्डन, मूर्तिपूजा की आलोचना, देवी–देवताओं, मनौती, बलि

एवं अंधविश्वासों का भण्डाफोड़, अस्पृश्यता निषेध, दलितोद्धार, अकाल–बाढ़ पीड़ित मानवता को सहायता आदि उनके समाज सुधार कार्यक्रम के प्रमुख अंग थे।''[14] अपनी चर्चाओं के माध्यम से उन्होंने सामाजिक जागृति का संदेश संचारित कर लोगों से अपने जीवन में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की अपील की।

विदेश यात्राओं को वर्जित माने जाने के विचार पर उन्होंने कठोर प्रहार करते हुए कहा कि इसे अधर्म सम्मत मानने का कोई भी तार्किक या व्यावहारिक आधार नहीं है। जहाँ एक ओर इनसे राष्ट्र की उन्नति का मार्ग खुलता है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक समृद्धि की सम्भाव्यताएं भी विकसित होती हैं। उन्होंने कहा कि, ''यदि हम अपने आचरण और विचारों की पवित्रता का दृढ़तापूर्वक निर्वाह करें, तो कोई भी विदेशी सम्पर्क हमें पतित नहीं कर सकता।''[15] उनके मार्गदर्शन में आर्यसमाज ने निम्न वर्गों, पद–दलितों को स्व–अधिकारों के लिए संघर्ष करना सिखाया, सार्वजनिक स्थलों का बेहिचक उपयोग के लिए उत्साहित किया। इन प्रयासों ने मध्ययुगीन रूढ़िगत मतों के स्थान पर उन शक्तियों को जन्म दिया जिन्होंने आधुनिक भारत को जन्म दिया''[16] समाज सुधार एवं पुनर्जागरण के कार्यक्रम भारत में राष्ट्रीय–राजनीतिक प्रगति के पूर्वगामी सिद्ध हुए। दयानंद के इस संदेश का यह महान राष्ट्रीय मूल्य है कि सभी को (अछूतों व स्त्रियों) वेदाध्ययन का समान अधिकार है। इस प्रकार पुनर्जागरण के उस युग में वैदिक व प्राचीन संस्कृति के बोध के पोषण ने सभी हिन्दुओं को अपने अधिकारों के विषय में आग्रह करना सीख लिया।

स्वामी दयानंद सरस्वती वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रबल समर्थक थे, परन्तु कालान्तर में व्यवहार में वर्ण–व्यवस्था के नाम पर जन्मी विकृत स्वरूप जाति–प्रथा को उन्होंने घोर अन्यायपूर्ण मानकर निंदा की। उन्होंने इस बात का खण्डन किया कि व्यक्ति मात्र जन्म के आधार पर किसी विशिष्ट वर्ण की सदस्यता ग्रहण करता है। उनके अनुसार, ''किसी विशेष वर्ण की सदस्यता, मनुष्य अपनी क्षमताओं व गुणों के आधार पर अर्जित करता है।''[17] वेदों में वर्णित वर्ण–व्यवस्था, ईश्वर द्वारा मनुष्य की क्षमता के अनुरूप उनके कार्यों के विभाजन की स्वाभाविक व्यवस्था को व्यक्त करती है।[18] सामाजिक समरसता को चरमराने वाली इस दूषित जाति आधारित वर्ण–व्यवस्था के निदान हेतु उन्होंने पुनःस्मरण करवाया कि वेदों के अनुसार मनुष्य का वर्ण–उसकी मानसिक वृत्तियों, गुणों एवं कर्मों के अनुसार निर्धारित किया जाए। वर्ण के संबंध में यह कसौटी सचमुच लोकतांत्रिक है। उनका विश्वास था कि मनोवैज्ञानिक तथा व्यावसायिक कसौटी पर आधारित वर्ण व्यवस्था अनेक सामाजिक संघर्षों का समाधान कर सकता है। उनका मत था कि 'जीवन के विभिन्न चरणों में, विभिन्न आश्रमों में रहते हुए व्यक्ति धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष के रूप में चारों पुरूषार्थों को सिद्ध कर सकते हैं।''[19]

भारत के एक बड़े भूभाग में सामाजिक सुधारों को क्रियान्वित करने का श्रेय स्वामी दयानंद को देना ही पड़ेगा। उनके पूर्ववर्ती समाज सुधारकों ने जहाँ वैचारिक प्रेरणायें पाश्चात्य चिंतन एवं जीवन पद्धति से ग्रहण कीं, वहीं दयानंद सरस्वती ने वेदों व अन्य भारतीय शास्त्रों का उदार व वैज्ञानिक विश्लेषण करके भारत में सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान हेतु विशुद्ध भारतीय वैचारिक आधारभूमि प्रस्तुत की। सुधारवादी आग्रह केवल उनके सामाजिक चिंतन में ही व्यक्त नहीं हुआ है, बल्कि उसके प्रति अपनी निष्ठा की क्रियान्विति भी की। उनके द्वारा स्थापित ''आर्यसमाज'' ने देश में सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक जागृति हेतु महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन किया। 20 वीं सदी के आरम्भ में इसके संगठित प्रयासों से उत्तर भारत की दशा व दिशा में हम बहुत बड़ा परिवर्तन पाते हैं। ''सारे समाज में एक खलबली सी उत्पन्न हो गई, जो राजनीतिक क्रांति की पूर्व–पीठिका बनी। जब राष्ट्रीय आंदोलन का अंतिम दौर शुरू हुआ, तब तक यह स्पष्ट हो चुका था कि यद्यपि सामाजिक रोग सर्वथा नष्ट नहीं हुए, वे जड़ से हिल अवश्य चुके थे।''[20]

सामाजिक–धार्मिक क्षेत्रों में जिस आक्रामकता का परिचय दयानंद ने दिया, वह अंशतः इस्लाम और ईसाइयत– इन दो सेमेटिक धार्मिक सम्प्रदायों के मदोन्मत रवैये के विरुद्ध संतुलन बनाये रखने का एक साधन था। उनका वैदिक आदर्शवाद–कर्म की प्रेरणा देने के लिए आग्रह था। ''राष्ट्र की प्रसुप्त शक्ति का विकास हो इसलिए ही आर्यसमाज ने वैदिक राष्ट्रवाद का मंत्र दृढ़ किया।''[21]

jk"Vªh; f'k{k.k ijEijk dk l=ikr

राष्ट्रीय उन्नयन के लिए शिक्षा का समुचित प्रचार–प्रसार दयानंद की कार्ययोजना का अभिन्न हिस्सा था। उनका विश्वास था कि इसके माध्यम से जहाँ सामाजिक–धार्मिक कुरूतियों एवं विकृतियों का समूल उन्मूलन होना सम्भव था, वहीं व्यक्ति के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास भी होना था। ब्रिटिश शासन काल में आरोपित शिक्षा पद्धति का उद्देश्य भारतीयों को छोटे–छोटे पदों पर नियुक्त होने हेतु योग्य बनाना मात्र था। दयानंद देश में ऐसी शिक्षण संस्थाएँ विकसित करना चाहते थे, जिनसे विद्यार्थियों में न केवल सामान्य ज्ञान, अपितु राष्ट्र–प्रेम, आत्मनिर्भरता, सांस्कृतिक गौरव की भावना का भी संचार किया जा सके। दयानंद के अनुसार, 'शिक्षा व्यक्ति को सत्याचरण में प्रवृत्त और असत्याचरण से विमुख करती है।''[22] 'लार्ड कर्जन एवं मिण्टो की निरंकुश नौकरशाही के युग में जब पूर्णतया दमन, प्रतिक्रियावादी और स्वेच्छाचारी नीतियों के द्वारा भारत का शासन चलाया जा रहा था–आर्यसमाज का यह कार्यक्रम अत्यन्त व्यापक एवं तत्कालीन परिस्थितियों के संदर्भ में अत्यन्त उग्र एवं क्रांतिकारी था।''[23]

वैदिक शिक्षण परम्परा के माध्यम से आर्यसमाज न केवल नये समाज व युग की नींव रख रहा था, अपितु भारतीय राष्ट्रवाद का भी आव्हान कर रहा था। 'इसके द्वारा संचालित संस्थाओं के विद्यार्थी अपनी प्राचीन सभ्यता व संस्कृति पर अभिमान करते थे। 'आर्यवर्त, आर्यों के लिए' उनका आदर्श वाक्य था''[24] इसी ध्येय हेतु 1 जून 1886 को स्वामी दयानंद की स्मृति में लाहौर में 'दयानंद एंग्लो वैदिक हाई स्कूल' की स्थापना हुई।''[25] देश की यह प्रथम शिक्षण संस्था थी जो आर्थिक दृष्टि से पूर्णतः सरकारी अनुदान से मुक्त थी एवं जिसका प्रबंधन भारतीयों के हाथों में था। इसके बाद तो पंजाब, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, बिहार, बंगाल एवं अन्य प्रांतों में भी डी. ए.वी. स्कूल एवं कॉलेजों का संचालन आर्यसमाजियों द्वारा किया जाने लगा। वहीं आर्यसमाज ने महिला शिक्षण संस्थाओं की स्थापना कर यह स्पष्ट कर दिया कि शिक्षा केन्द्र ही देश के तत्कालीन वातावरण में आमूल–चूल क्रांति कर सकते हैं। कन्या गुरुकुलों ने देश व समाज को अनेक सुशिक्षित महिलाएँ अर्पित की। बंगाल में ईश्वरचंद विद्यासागर, दक्षिण भारत में महादेव गोविंद रानाडे तथा प्रो. कर्वे ने स्त्री–शिक्षा के लिए जो कार्य किया था, दयानंद स्वामी ने वही कार्य उत्तर भारत में किया। इन सभी का दृढ़ विश्वास था कि स्त्रियों को शिक्षण की परिधि में लाए बिना राष्ट्रीय पुनर्जागरण अधूरा है।

राष्ट्रीय जागृति एवं उसके माध्यम से भारतीय राष्ट्रवाद को दयानंद की सबसे बड़ी देन 'गुरुकुल शिक्षा प्रणाली' है। [26] गुरुकुल आंदोलन के सूत्रधार विदेशी शिक्षा पद्धति के साथ कोई समझौता करना नहीं चाहते थे। समय की माँग एवं देशकाल परिस्थितियों के कारण गुरुकुल के धार्मिक–शैक्षणिक पहलू के साथ राष्ट्रीय पहलू भी सम्मिलित हो गया।[27] टाइम्स संवाददाता सर वेलेन्टाइन शिरोल ने 'इण्डियन अनरेस्ट' में गुरुकुल को राजद्रोह के अड्डों के रूप में दर्शाया है। सन् 1907 से 1913 ई. के मध्य में ऐसे देशभक्त भी गुरुकुल को अपना सुरक्षित आश्रय स्थल समझते थे जिनके पीछे सरकार के वारंट घूम रहे थे। प्रसिद्ध देशभक्त लाला हरदयाल, सी.एफ. एन्ड्रूज एवं गाँधी आदि नेताओं ने महीनों गुरुकुल कांगड़ी में निवास कर ब्रह्मचारियों को स्वराज का संदेश दिया। ''गुरुकुल आंदोलन के जन्मकाल से ही जहाँ राष्ट्रवादी भारतीय जनता में उसके प्रति श्रद्धा व विश्वास का भाव बढ़ता गया, वहाँ अंग्रेज सरकार के गुप्तचर विभाग में इन संस्थाओं का नाम काली सूची में लिखा हुआ था। विदेशी दासता, साम्राज्यवादी शोषण एवं अत्याचारों के विरुद्ध आर्यसमाज की यह उग्र किन्तु रचनात्मक मुद्रा थी।''[28] गुरुकुल की स्थापना सरकारी शिक्षा प्रणाली के प्रतिरोध स्वरूप हुई थी जिसमें शिक्षा का पाठ्यक्रम राष्ट्रीय, माध्यम हिन्दी एवं प्राचीन साहित्य का अध्ययन अनिवार्य था। इन संस्थाओं में मानसिक विकास के साथ–साथ शारीरिक व्यायाम यथा–घुड़सवारी, तैराकी, तलवार आदि का प्रशिक्षण सरकार की आँखों में खटकने वाला था। शिक्षा के प्रति दयानंद की प्रतिबद्धता इस बात से स्पष्ट होती है कि उन्होंने इसे राज्य द्वारा घोषित किया जाना उचित माना एवं यह प्रस्तावित किया कि, ''पाँच से आठ वर्ष की आयु के पश्चात भी जो अभिभावक क्रमशः अपने पुत्र और पुत्रियों को शिक्षा के लिए पाठशाला में न भेजें, उन्हें राज्य द्वारा दण्डित किया जाना चाहिए।''[29] वे शुद्रों व स्त्रियों सहित सभी व्यक्तियों को वेदों व ज्ञान की अन्य शाखाओं के अध्ययन के निरपवाद

अधिकार के प्रबल पक्षधर थे। सह–शिक्षा का समर्थन न करते हुए उन्होंने अपेक्षा की कि, ''बालकों को पुरूष शिक्षकों द्वारा तथा बालिकाओं को महिला शिक्षिकाओं द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए।''[30] उनका मत था कि शिक्षक नैतिक गुणों से युक्त हो तथा उसका आचरण पवित्रतापूर्ण, निष्ठावान एवं विषय पारंगतता से परिपूर्ण होना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षण परम्परा के सूत्रपात के साथ–साथ, उन्होंने अंग्रेजी की शिक्षा से परहेज न करते हुए पूरे देश में एंग्लो–वैदिक कॉलेजों की स्थापना की। दयानंद ने राष्ट्रीयता की भावना के प्रसार हेतु रात्रिकालीन पाठशालाओं, गुप्त शिक्षण संस्थाओं, प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की भी स्थापना पर बल दिया। युवकों को स्वावलम्बन, आत्मनिर्भरता की शिक्षा देना इन संस्थाओं का घोषित लक्ष्य था।

jk"VªHkk"kk fgUnh dk izpkj

भारत की प्रादेशिक भाषाओं की एक लिपि–देवनागरी लिपि होने की कल्पना सर्वप्रथम स्वामी दयानंद के मस्तिष्क में उत्पन्न हुई। आर्यभाषा हिन्दी का देश–विदेश में प्रचार–प्रसार कर उन्होंने श्रेष्ठ राष्ट्रसेवा की। इसी क्रम में 'आर्यसमाज ने राष्ट्रभाषा को समृद्ध करने वाले अनेक विद्वान लेखक, साहित्यकार, कवि, आलोचक, पत्रकार प्रदान किए।''[31] इन बुद्धिजीवियों ने धर्मशास्त्रों के महत्व एवं उनमें विद्यमान बहुमूल्य ज्ञान के प्रति लोगों की श्रद्धा को अधिक दृढ़ बनाने के लिए अपनी लेखनी का भरपूर सदुपयोग किया। प्राचीन ग्रंथों का नव मानवतावादी तथा सर्वराष्ट्रवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण किया जाने लगा। दयानंद के इस सांस्कृतिक एवं वैचारिक आंदोलन से प्रभावित हिंदी प्रेमियों ने हिंदी का प्रचार एवं सांस्कृतिक पुनरुत्थान में असीम योगदान दिया। यदि आर्यसमाज के प्रतिबद्ध कार्यकर्त्ता दक्षिण भारत जाकर हिंदी के प्रचार अभियान का संचालन न करते, तो यथासंभव हिंदी राष्ट्रभाषा पद पर आसीन कराने कार्य अधूरा ही रह जाता। विदेशों में भी इन कार्यकत्ताओं ने हिंदी को जीवित जागृत सम्पर्क भाषा के रूप में बनाए रखा। अतः जिस प्रकार पुनर्जागरण के समय इटालवी, जर्मन एवं फ्रांसीसी भाषाओं के विकास से यूरोप में राष्ट्रवाद के उत्थान को उत्प्रेरणा मिली, ठीक उसी भाँति स्वामी दयानंद के हिंदी प्रचार अभियान से भारतीय राष्ट्रवाद के विकास को यथेष्ट प्रेरणा मिली।

jk"Vªh; tu tkxj.k ,oa vk;Z i=&if=dk,¡

भारतीय पत्रकारिता की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। दोनों की विकास भूमियाँ परस्पर सहायक रही हैं। ''उत्तर भारत में हिंदी पत्रकारिता का जन्म ही नहीं बल्कि विकास का ऐतिहासिक कार्य भी आर्य पत्रकारों द्वारा सम्पन्न हुआ।''[32] आर्य पत्र–पत्रिकाओं के अधिकांश सम्पादक व पत्रकारों ने राष्ट्रीय आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में रहकर स्वाधीनता संघर्ष को अंतिम परिणति तक पहुँचाया। अतः आर्य पत्रकारिता भारतीय राष्ट्रीयता की ही कहानी है। शायद इसलिए इसे ब्रिटिश सरकार की दमन नीति का शिकार होना पड़ा था। इन पत्रकारों पर समाज संस्कार का भी दायित्व था। अतः उनमें इतनी निष्ठा व धैर्य था कि वे पत्र पढ़–पढ़ कर अपने ग्राहकों को सुनाया भी करते थे। इस कठिन प्रयास से इन पत्रकारों ने लोकरूचि का परिमार्जन एवं उन्नयन किया।

Lons'kh ,oa cfg"dkj vkUnksyu

राजनीतिक स्तर पर बड़े पैमान पर स्वदेशी एवं बहिष्कार आंदोलन की क्रियान्विति हमें बंगाल विभाजन, 1905 के बाद देखने को मिलती है, परन्तु दयानंद ने इसकी चर्चा बहुत पहले ही कर दी थी। उनका मत था कि राष्ट्र की सामान्य आवश्यकताओं की आपूर्ति राष्ट्रीय स्तर पर ही होनी चाहिए। वे इस तथ्य से सुपरिचित थे कि औपनिवेशिक ताकतें शोषणकारी प्रवृत्ति की होती हैं। अतः ब्रिटिश सरकार कभी भी भारतीय उद्योगों को प्रश्रय प्रदान नहीं करेगी। उनका स्पष्टतः मानना था कि भारत की सामाजिक–राजनीतिक एकता के लिए भारतीय अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण अनिवार्य है। मार्च, 1883 में जोधपुर के महाराज को उन्होंने स्वदेशी वस्त्र उद्योग को सहायता करने की सलाह दी, जिसके परिणामस्वरूप पूरे राज्य में खादी का प्रयोग होने लगा। 'आदिम सत्यार्थ प्रकाश' (1875 में प्रकाशित) में स्वामी दयानंद ने नमक कर व वन कानून का प्रबल विरोध किया, जिसके संदर्भ में बाद में गाँधी ने 1930 में देशव्यापी नमक व सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया। अदालतों में स्टाम्प शुल्क

आदि का विरोध भी इसी संस्करण में देखने को मिलता है। उन्होंने भारतीयों में पाश्चात्य सभ्यता के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति की कठोर आलोचना की। उनका मत था कि स्वदेशी मूल्यों, शिक्षा पद्धति एवं वस्तुओं को छोडकर विदेशी वस्तुओं के प्रति भागने की भारतीय मनोवृत्ति–मानसिक दासता को ही इंगित करती है। इसलिए उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं, मूल्यों व जीवन पद्धति को अपनाने का आव्हान किया। यहाँ यह स्पष्ट करना भी उचित होगा कि उनका यह आग्रह संकीर्णतापूर्ण नहीं है। उनका विचार था कि व्यक्ति को स्वयं के मूल्यों, सभ्यता एवं वस्तुओं के प्रति आदर का भाव रखते हुए भी, स्वयं की मिथ्या, विकृत व हानिप्रद बातों को त्यागने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिए। साथ ही, दूसरे मतों के प्रति मात्र इस कारण तिरस्कार का भाव नहीं रखना चाहिए क्योंकि वह विदेशी मत है। वैदिक जीवन पद्धति को अपनाने के पीछे उनकी मान्यता थी कि यह विदेशी मत, मूल्यों एवं सभ्यता की अपेक्षा सत्यनिष्ठ एवं श्रेयस्कर है। इसी संदर्भ में ''सत्यार्थ प्रकाश'' में उन्होंने कहा है कि ''उनके ग्रंथ का उद्देश्य विदेशी मत–मतान्तरों पर आक्षेप लगाना नहीं अथवा उन्हें क्षति पहुँचाना नहीं है, अपितु मानव मात्र के कल्याण के लिए सत्य मत को प्रतिष्ठित करना ही उनका लक्ष्य है।''[33]

19 वीं सदी के अंतिम दशकों के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो गया था कि लोगों के आर्थिक–राजनीतिक कष्टों का निदान ब्रिटिश वस्तुओं के बहिष्कार एवं स्वदेशी के अधिकाधिक प्रयोग में निहित है। दयानंद ने इस कार्यक्रम का द्रुतगति से प्रचार–प्रसार किया, जिससे जनमानस में नई चेतना व स्फूर्ति का उदय हुआ। वे स्वदेशी प्रयोग को धार्मिक कर्त्तव्य समझते थे। ''जिस भावना से प्रेरित होकर उन्होंने स्वदेशी का नारा दिया था, सन् 1905 में बंगाल विभाजन से उत्पन्न परिस्थितियों में देशवासियों के समक्ष उसकी महत्ता स्पष्ट कर दी।''[34] कांग्रेस द्वारा इस कार्यक्रम को अपनाये जाने से वर्षों पूर्व ही आर्यसमाज के प्रतिबद्ध कार्यकर्ता, इसको संचारित करने में जी–जान से जुटे थे। परिणामस्वरूप भारतीय राजनीति में उग्रवादी विचारधारा, असहयोग एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन अस्तित्व में आये जिन्होंने आगामी वर्षों में देश में राष्ट्रवादी भावना को तीव्र गति प्रदान की। उग्रवादियों का लक्ष्य न केवल राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना था, बल्कि भारतीय नवयुवकों के लिए सांस्कृतिक स्वाधीनता भी प्राप्त करना था। यह स्वामी दयानंद एवं आर्यसमाज का भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन पर प्रत्यक्ष प्रभाव था। उग्र–राष्ट्रवादी नेता दयानंद, विवेकानंद एवं रामतीर्थ से प्रेरणा ग्रहण करते थे। न केवल लाल–बाल–पाल की त्रिमूर्ति स्वामी दयानंद की शिक्षाओं से प्रभावित थी, अपितु खारपड़े एवं अरविंद घोष जैसे उग्रवादी नेता तो महर्षि से भी दो कदम आगे बढ़ गये। ''मेरी राय में तो वेद उस सत्य ज्ञान की अमूल्य निधि हैं जो आधुनिक विश्व को अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है। स्वामी दयानंद के दावे अतिरंजित न होकर, न्यूनातिन्यून ही हैं।''[35] स्पष्ट है कि प्रारम्भिक भारतीय नेतृत्व ने 'स्वदेशी' का विचार दयानंद से ग्रहण किया। दयानंद 'भारतीय–भारत' के प्रतिबिम्ब थे। वे अपने विचारों से ही नहीं बल्कि जीवन–पद्धति में भी पूर्णतः स्वदेशी थे। उन्होंने भारतवर्ष को स्वदेशी का वैचारिक अधिष्ठान प्रदान किया, जिस पर आगे चलकर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन का भवन निर्मित हुआ। दयानंद द्वारा संस्थापित आर्यसमाज ने जो राष्ट्र मंथन किया एवं पराधीनता की आत्मग्लानि से उभरने के लिए वैदिक गरिमा का जो पुनःस्मरण किया – गाँधी युग उसी भारतीय परम्परा के फिर से उठने का स्वाभाविक परिणाम था। इसलिए मैकडोनाल्ड ने लिखा है, ''भारतीय राष्ट्रवाद राजनीतिक मण्डलियों का आंदोलन ही नहीं, अपितु इससे आगे बढ़कर बहुत कुछ रहा है। यह एक ऐतिहासिक परम्परा का पुनरुज्जीवन है, एक राष्ट्र की मुक्ति है।[36]

lanHkZ xzUFk lwph

1 सिंह, विजेन्द्र पाल, 'भारतीय राष्ट्रवाद एवं आर्यसमाज; शोध लेख, 'लोकतंत्र समीक्षा' अंक–2, (नई दिल्ली, संविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान), अप्रेल–जून, 1974, पृ. 272

2 मूलर, एफ. मैक्स, 'दयानन्द सरस्वती–जीवन परिचय' न्यूयोर्क, सी. स्क्रिनबनर्स संस, 1884

3 दयानंद, स्वामी, 'सत्यार्थ प्रकाश', (अजमेर, वैदिक यंत्रालय), 1973, पृ. 149

4 मैकडोनाल्ड, जे. रेमसे, 'दी अवेकनिंग ऑफ इण्डिया, हॉडर एण्ड स्टॉग्टन, लंदन, 1943, पृ. 37

5 शिरोल, सर वेलेन्टाइन, 'इण्डियन अनरेस्ट', मैकमिलन एण्ड कं. लि., लंदन, 1910, पृ. 177

6 हेस्टिंग्स, जेम्स, (सम्पा.) 'एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स, खण्ड–2, स. 7, पृ. 58–59
7 मैकडोनाल्ड, जे. रेमसे, 'दी गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, दी स्वार्थमोर प्रेस, लंदन, 1923, पृ. 237
8 सिंह, विजेन्द्र पाल, 'आर्यसमाज के सौ सुनहरे वर्ष', जन्म शताब्दी अवसर पर आकाशवाणी, दिल्ली से प्रसारित वार्ता का अंश, 12 अप्रेल, 1975
9 दयानंद, स्वामी, 'सत्यार्थ प्रकाश' पृ. 172
10 दयानंद, स्वामी, 'आर्याभिविनय', (अजमेर, वैदिक यन्त्रालय), 1946
11 ज़कारिया, एच.सी.ई., 'रिनेसेंट इण्डिया फ्रॉम राममोहन रॉय टू महात्मा गाँधी (1772–1930), लंदन, जी. एलन एण्ड अनविन लि., 1933, पृ. 38
12 पाारीक, आर.एस., 'कॉन्ट्रीब्यूशन ऑफ आर्यसमाज इन मेकिंग ऑफ मॉडर्न इण्डिया, पीएच.डी. शोध प्रबंध, राज. वि.वि., जयपुर, 1964
13 अग्रवाल, ओ.पी., 'कॉन्ट्रीब्यूशन ऑफ आर्यसमाज इन रिजीलियस, सोशल एण्ड कल्चरल लाइफ ऑफ इण्डिया, पीएच.डी. शोध प्रबंध, आगरा वि.वि., 1961
14 'जांत–पांत तोड़क मण्डल–सामान्य परिचय; 'पैम्फलेट (लाहौर, जांत–पांत तोड़क मण्डल), 1939, पृ. 1–3
15 'सत्यार्थ प्रकाश', दशम् समुल्लास, पृ. 165
16 पालिन, एम. महर, 'चेन्जिंग रिलीजियस प्रेक्टिसेज ऑफ एन अनटचेबल कास्ट; शोध लेख, 'इकनोमिक डेवलपमेंट एण्ड कल्चरल चेंज, भाग–3, सं. 3, अप्रेल, 1960, पृ. 279–89
17 'सत्यार्थ प्रकाश', चतुर्थ समुल्लास, पृ. 53
18 ऋग्वेद भाष्यम्, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पृ. 145
19 ऋग्वेद भाष्यम्, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, वर्णाश्रम विषय, पृ. 276
20 शारदा, हरिविलास (सम्पा.), ''दयानंद कामामोरेशन वाल्यूम' में उद्धृत, (अजमेर वैदिक यन्त्रालय), 1933, पृ. 73
21 सिंह, विजेन्द्र पाल, 'आर्यसमाज एवं भारतीय राष्ट्रवाद', पृ. 85–86
22 ऋग्वेद भाष्यम्, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, पृ. 279
23 विद्यावाचस्पति, इन्द्र, 'आर्यसमाज का इतिहास', द्वितीय भाग (दिल्ली, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा), 1957, पृ. 2–5, 27
24 रोनाल्डशे, अर्ल, ''दी हर्ट ऑफ आर्यावर्त, लन्दन कान्स्टेबिल एण्ड क. लि., 1925, पृ. 58
25 आर्य पत्रिका, ''20 जून 1888
26 'माडर्न रिव्यू में लेख, ''दी एजूकेशनल प्राब्लम ऑफ इण्डियन नेशनल्स', भाग–23, सं. 133, जनवरी, 1918
27 गृह राजनीतिक विभाग कार्यवाही, खण्ड–बी, नवम्बर, 1910, सं. 17–24 (राष्ट्रीय संग्रहालय, दिल्ली)
28 'द ट्रिब्यून', 26 सितम्बर, 1952, पृ. 7
29 'सत्यार्थ प्रकाश,' तृतीय समुल्लास, पृ. 21
30 'सत्यार्थ प्रकाश', तृतीय समुल्लास, पृ. 25
31 'लाल लक्ष्मीनारायण, ''हिन्दी भाषा और साहित्य को आर्यसमाज की देन'', पीएच.डी. शोध प्रबंध, लखनऊ वि.वि., 1961
32 भटनागर, रामरतन, ''राइज एण्ड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जनरलिज्म'', पीएच. डी. शोध प्रबंध, इलाहबाद वि.वि. , इलाहबाद किताब महल, 1947, पृ. 357
33 'सत्यार्थ प्रकाश,' भूमिका, पृ. 2
34 'आर्य गजट', 21 सितम्बर, 1905
35 घोष, अरविंद, ''बंकिम–तिलक–दयानंद; (पाण्डिचेरी, श्री अरविंद आश्रम), 1943, पृ. 98
36 मैकडोनाल्ड, जे. रेमसे, 'दी गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया, दी स्वार्थमोर प्रेस, लंदन, 1923, पृ. 239

♦❐♦